

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 7: द्रोणपुत्र को दण्ड

11 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



पाण्डवों के शिविर में अर्जुन बँधे हुए अश्वत्थामा को शोकमग्न द्रौपदी के समक्ष लाते हैं, और द्रौपदी करुणावश उन्हें प्रणाम कर अपने पुत्रों के वधकर्ता के प्राणों की भिक्षा माँगती है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम् में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमयी यात्रा। प्रथम स्कन्ध के सातवें अध्याय में शास्त्र इस ग्रन्थ की रचना की कथा से मुड़कर उस पहली महान मानवीय घटना की ओर आता है जिसे वह कहेगा। यहाँ हम जानते हैं कि व्यास जी ने यह ग्रन्थ संसार को क्यों दिया, और फिर हम कुरुक्षेत्र की उस शोकपूर्ण भूमि पर ले जाए जाते हैं, जहाँ एक

रात्रि का अपराध, एक धधकता अस्त्र, एक माता का शोक और एक नारी की करुणा — ये सब मिलकर धर्म का एक पाठ बन जाते हैं। यह अध्याय आधार का भी है और अग्नि का भी।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 1 (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: 7 (सातवाँ अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: द्रोणपुत्र को दण्ड
- प्रमुख वक्ता: पूज्य सूत जी, उग्रश्रवा, प्राचीन कथाओं के वक्ता (कथा के भीतर शौनक, अर्जुन, द्रौपदी तथा श्रीकृष्ण के वचन भी हैं)
- प्रमुख श्रोता: शौनक तथा ऋषि-सभा
- मुख्य स्थल: सरस्वती के पश्चिमी तट पर शम्याप्रास आश्रम, तथा कुरुक्षेत्र के युद्ध के पश्चात् का परिदृश्य
- केन्द्रीय विषय: व्यास जी ने भागवत की रचना क्यों की; और द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों के वधकर्ता अश्वत्थामा का पीछा, बन्दीकरण तथा दण्ड
- प्रमुख श्लोक-परास: स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 1-58
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

नैमिषारण्य वन में एक प्रश्न

अध्याय का आरम्भ एक प्रश्न से होता है। पूर्व अध्याय में व्यास जी को उपदेश देकर देवर्षि नारद अभी-अभी विदा हुए हैं। अब ऋषि-सभा में बैठे शौनक जी वक्ता से पूछते हैं: नारद जी के चले जाने पर, और देवर्षि के कहे समस्त वचनों को हृदय में धारण कर लेने पर, सत्यवती-नन्दन सर्वशक्तिमान व्यास जी ने आगे क्या किया?

यह एक छोटा-सा प्रश्न है जिसका उत्तर बहुत बड़ा है, क्योंकि यह स्वयं श्रीमद्भागवत के अस्तित्व के कारण का द्वार खोल देता है।

सरस्वती-तट पर व्यास जी का ध्यान

सूत जी उत्तर देते हैं। सरस्वती नदी के पश्चिमी तट पर, शम्याप्रास नामक एक आश्रम में — जो ऋषियों के यज्ञमय जीवन को पोषित करता है — व्यास जी का अपना आश्रम था, जो बेर के वृक्षों के उपवन से घिरा हुआ था। वहाँ ऋषि बैठ गए, थोड़ा जल आचमन किया, और अपने ही प्रयत्न से अपने मन को एकाग्र कर स्थिर किया।



सरस्वती-तट पर शम्याप्रास आश्रम में व्यास जी अपने मन को ध्यान में एकाग्र करते हैं और परम पुरुष तथा उनकी माया का दर्शन करते हैं (श्लोक 3-4)।

भक्ति के अभ्यास से पूर्णतया एकाग्र हुए उस निर्मल मन में व्यास जी ने आदि पुरुष का दर्शन किया — और उनके समीप माया का, जो अपनी सत्ता के लिए भगवान् पर ही निर्भर है। उन्होंने देखा कि जीव, यद्यपि वस्तुतः तीनों गुणों से परे है, इस माया से मोहित होकर स्वयं को त्रिगुणात्मक मान बैठता है और इसीलिए दुःख भोगता है। और उन्होंने उसका उपाय भी देखा: कि इन्द्रियों से परे भगवान् की प्रेममयी भक्ति ही इस समस्त शोक के निवारण का साक्षात् साधन है। यह जानकर कि सामान्य जन इस कल्याणकारी सत्य को नहीं जानते, विद्वान् ऋषि ने उनके हित के लिए *सात्वत-संहिता* — भागवत, भक्तों का शास्त्र — की रचना की।

अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ।

लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥ ६ ॥

anarthopaśamaṁ sākṣād bhakti-yogam adhokṣaje lokasyājānato vidvāṁś cakre sātvata-saṁhitām

अर्थ: यह जानकर कि अधोक्षज भगवान् की प्रेममयी भक्ति ही जीव के समस्त अनर्थों का साक्षात् निवारण है, विद्वान् ऋषि ने उन लोगों के लिए इस सात्वत-संहिता की रचना की जो इसे नहीं जानते थे। (स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 6)

यह शास्त्र क्यों दिया गया

तत्पश्चात् सूत जी हमें केवल इस ग्रन्थ के श्रवण का फल बताते हैं। ज्यों ही मनुष्य भागवत का पाठ सुनता है, उसके हृदय में परम पुरुष श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति उमड़ पड़ती है — और वह भक्ति शोक, मोह तथा भय को हर लेती है।

यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ।

भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहभयापहा ॥ ७ ॥

yasyām vai śrūyamāṇāyām kṛṣṇe parama-pūruṣe bhaktir utpadyate puṁsaḥ śoka-moha-bhayāpahā

अर्थ: केवल इस शास्त्र को सुनने मात्र से परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति हृदय में उदित होती है — वह भक्ति जो शोक, मोह और भय को दूर कर देती है। (स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 7)

भागवत की रचना और पुनरावृत्ति करके व्यास जी ने इसे अपने पुत्र शुकदेव जी को पढ़ाया, जो एकान्तवास में रमने वाले जीव थे।

शुकदेव जी के विषय में प्रश्न

यहाँ शौनक जी एक स्वाभाविक जिज्ञासा से बीच में आते हैं। शुकदेव जी तो पहले से ही आत्मस्थ थे, संसार की प्रत्येक वस्तु से उदासीन, केवल अपनी आत्मा में ही आनन्दित। तब ऐसे पूर्णतया आत्मतृप्त मुनि को इतना विशाल ग्रन्थ अध्ययन करने का क्या प्रयोजन था?

सूत जी सम्पूर्ण भागवत के सर्वाधिक प्रिय श्लोकों में से एक से उत्तर देते हैं — आत्माराम श्लोक। जो ऋषि केवल आत्मा में ही रमण करते हैं, जिनकी अज्ञान की समस्त ग्रन्थियाँ कट चुकी हैं, वे भी भगवान् हरि की निर्हेतुक, प्रेममयी भक्ति करते हैं; क्योंकि भगवान् के गुण ही ऐसे हैं कि वे मुक्तों को भी अपनी ओर खींच लेते हैं।

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।

कुर्वन्त्यहेतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥ १० ॥

ātmārāmāś ca munayo nirgranthā apy urukrame kurvanty ahaitukīm bhaktim ittham-bhūta-guṇo hariḥ

अर्थ: आत्माराम मुनि भी, जो समस्त बन्धनों से मुक्त हैं, उरुक्रम भगवान् की निर्हेतुक भक्ति करते हैं — श्रीहरि के गुण ही ऐसे हैं। (स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 10)

बादरायण-पुत्र और विष्णुभक्तों के प्रिय शुकदेव जी के साथ भी ऐसा ही था: श्रीहरि की महिमाओं से मुग्ध मन वाले वे प्रतिदिन इस महान कथा का अध्ययन करते थे।

परीक्षित की कथा की भूमिका

अब सूत जी उस इतिहास की ओर मुड़ते हैं जिसे इस स्कन्ध का शेष भाग खोलेगा। वे राजर्षि परीक्षित के जन्म, कर्म और मोक्ष की, तथा पाण्डु-पुत्रों के प्रयाण की कथा कहने का वचन देते हैं — क्योंकि ये श्रीकृष्ण की कथा की भूमिका हैं। परीक्षित तक पहुँचने के लिए हमें पहले युद्ध के अन्तिम, भयंकर क्षणों में लौटना होगा।

अश्वत्थामा का रात्रि-अपराध

जब दोनों सेनाओं के योद्धा वीरगति को प्राप्त हो चुके थे, और दुर्योधन भीम की गदा से जंघा टूटी हुई अवस्था में पड़ा था, तब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने एक अन्धकारपूर्ण कर्म किया। गहरी रात्रि में शिविर में घुसकर उसने द्रौपदी के पाँचों सोते हुए पुत्रों के सिर काट डाले, और उन्हें मरणासन्न दुर्योधन के पास एक ऐसी भेंट के रूप में ले गया जिससे वह अपने स्वामी को प्रसन्न करने की कल्पना कर रहा था। किन्तु वह कर्म इतना घृणित था कि दुर्योधन भी विरक्त हो उठा, और सम्पूर्ण संसार उसकी निन्दा करेगा।



द्रौपदी, आँसुओं से अन्धी आँखें लिए, यह समाचार सुनकर विलाप करती है कि उसके सोते हुए पुत्र मारे गए; अर्जुन उनके वधकर्ता का सिर लाने की प्रतिज्ञा करते हैं (श्लोक 15-16)।

जब यह वध-समाचार द्रौपदी तक पहुँचा, तो वह आँसुओं से अन्धी आँखें लिए फूट-फूटकर रोने लगी। अर्जुन ने उसे सान्त्वना देते हुए एक दृढ़ प्रतिज्ञा की: तभी उसके आँसू पूँछेंगे जब वे अपने गाण्डीव धनुष के बाणों से उस पतित ब्राह्मण का सिर काटकर उसके समक्ष रख देंगे — तब वह उस पर पैर रखकर अपने पुत्रों के दाह-संस्कार के पश्चात् स्नान कर सकेगी।

अर्जुन का पीछा और ब्रह्मास्त्र

पत्नी को सान्त्वना देकर अर्जुन ने कवच धारण किया, अपना प्रचण्ड धनुष लिया, और — स्वयं श्रीकृष्ण को सखा और सारथि बनाकर, कपिध्वज रथ पर सवार होकर — पीछा करने निकल पड़े। अर्जुन को अपनी ओर वेग से आते देख, पहले से ही हृदय में सन्तप्त अश्वत्थामा प्राण बचाने भागा, जैसे कभी सूर्यदेव रुद्र के क्रोध से भागे थे, जहाँ तक उसका रथ ले जा सका।

जब उसके घोड़े थक गए और कोई रक्षक शेष न रहा, तब द्रोण-पुत्र ने अपने बचाव की एकमात्र आशा के रूप में ब्रह्मास्त्र का — ब्रह्मा के अधिष्ठान वाले अस्त्र का — स्मरण किया। यद्यपि वह छोड़े जाने के पश्चात् अस्त्र को लौटाना नहीं जानता था, फिर भी उसने जल आचमन कर उसे अपने धनुष पर चढ़ाया और छोड़ दिया। अस्त्र से एक प्रचण्ड ज्वाला प्रकट हुई और चारों ओर फैल गई।



घिरा हुआ और भागने में असमर्थ, अश्वत्थामा धधकता ब्रह्मास्त्र छोड़ता है, जिसकी अग्नि चारों ओर फैल जाती है, तब अर्जुन श्रीकृष्ण की ओर मुड़ते हैं (श्लोक 19-21)।

अर्जुन की भगवान् से प्रार्थना

अपने प्राणों को संकट में देख अर्जुन श्रीकृष्ण की ओर मुड़े और प्रार्थना की।

कृष्ण कृष्ण महाबाहो भक्तानामभयङ्कर ।
त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥ २२ ॥

kṛṣṇa kṛṣṇa mahā-bāho bhaktānām abhayaṅkara tvam eko dahyamānānām apavargo 'si saṁsṛteḥ

अर्थ: “हे कृष्ण! हे महाबाहु कृष्ण! भक्तों के भय को हरने वाले! जो संसार की अग्नि में जल रहे हैं, उनके एकमात्र उद्धारक आप ही हैं।”
(स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 22)

उन्होंने भगवान् की स्तुति की — साक्षात् परमेश्वर, समस्त प्रकृति से परे आदि पुरुष के रूप में, जो अपनी ही बुद्धि से सदा अपने परम स्वरूप में स्थित रहते हैं; जो अपनी माया से मोहित जीव को धर्म तथा समस्त कल्याण प्रदान करते हैं; जिनका अवतार पृथ्वी का भार हरता है और भक्तों को निरन्तर ध्यान का आलम्बन देता है। फिर विनम्रतापूर्वक उन्होंने स्वीकार किया कि वे नहीं जानते कि यह सर्वग्रासी ज्वाला क्या है और कहाँ से आई।

दोनों अस्त्रों का उपसंहार

भगवान् ने उत्तर दिया कि यह अश्वत्थामा द्वारा अपनी विवशता में छोड़ा गया ब्रह्मास्त्र है, और वह युवक इसे लौटाना नहीं जानता। कोई अन्य अस्त्र इसे परास्त नहीं कर सकता; केवल एक प्रति-ब्रह्मास्त्र ही इसे शान्त कर सकता है, और अस्त्रों में निपुण अर्जुन को ही उसे छोड़ना होगा। श्रद्धापूर्वक अर्जुन ने जल आचमन किया, भगवान् की परिक्रमा की, और पहले अस्त्र का सामना करने के लिए अपना ब्रह्मास्त्र चढ़ाया। बाणों से

घिरी दोनों ज्वालाएँ मिलकर इतनी बढ़ीं कि प्रलयकाल की दो अग्नियों-सी आकाश को भर गई, और सम्पूर्ण संसार को भय हुआ कि अन्त आ गया। तब लोगों का आतंक और समस्त लोकों का संकट देखकर, श्रीकृष्ण की अनुमति से, अर्जुन ने दोनों अस्त्र लौटा लिए।

बन्दी और परीक्षा

तब अर्जुन ने क्रोध से लाल आँखों वाले कृपी-पुत्र को पकड़ लिया और उसे यज्ञ-पशु की भाँति रस्सी से बाँधकर शिविर की ओर ले चले। किन्तु कमलनयन भगवान् ने, मानो क्रोध में, उनकी परीक्षा लेते हुए कहा:

मेनं पार्थार्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जहि ।

योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥ ३५ ॥

mainam pāarthārhasi trātum brahma-bandhum imam jahi yo 'sāv anāgasaḥ suptān avadhīn niśi bālakān

अर्थ: “हे अर्जुन! इस पतित ब्राह्मण को छोड़ना तुम्हारे लिए उचित नहीं। इसका वध करो — क्योंकि इसने रात्रि में सोते हुए निरपराध बालकों का वध किया।” (स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 35)

भगवान् ने कहा कि धर्मात्मा पुरुष उस शत्रु का वध कभी नहीं करता जो उन्मत्त हो, असावधान हो, विक्षिप्त हो, सोया हुआ हो, बालक हो, भयभीत हो, या शरणागत हो — और न ही किसी स्त्री का। फिर भी उस निर्दयी दुष्ट का अन्त कर देना जो दूसरों का संहार करके ही जीता है, वस्तुतः उसका ही हित है, अन्यथा वह अपने अपराध दोहराकर और गहरा गिरता। और भगवान् ने अर्जुन को उसकी वह प्रतिज्ञा स्मरण कराई जो उन्होंने द्रौपदी से उन्हीं के सामने की थी।

द्रौपदी की करुणा

फिर भी अर्जुन, जिस भगवान् ने उनके धर्म की परीक्षा ली उन्हीं से प्रेरित होकर, अपने ही गुरु द्रोण के पुत्र का वध नहीं कर सके। वे बँधे हुए बन्दी को शिविर में वापस लाकर द्रौपदी को दिखाने ले गए, जो अपने मारे गए पुत्रों के लिए तब तक शोक करती रही थी। और यहीं अध्याय अपने कोमल हृदय तक पहुँचता है।



द्रौपदी अपने पुत्रों के वधकर्ता के बँधे हुए पुत्र को देखती है और, स्वभाव से कोमल होने के कारण, उसे प्रणाम कर एक ब्राह्मण को छोड़ने की प्रार्थना करती है (श्लोक 42-43)।

अश्वत्थामा को देखकर — पशु की भाँति बँधा हुआ, अपने घृणित कर्म से लज्जित होकर नीचे झुके मुख वाला — स्वभाव से कोमल द्रौपदी उसी पुरुष के प्रति करुणा से भर उठी जिसने उसका अनिष्ट किया था, और उसने उसे प्रणाम किया।

तथाहृतं पशुवत् पाशबद्धमवाङ्मुखं कर्मजुगुप्सितेन ।
निरीक्ष्य कृष्णापकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥ ४२ ॥

tathāhṛtaṁ paśuvat pāśa-baddham avāṅ-mukhaṁ karma-jugupsitena nirīkṣya kṛṣṇāpakṛtaṁ guroḥ sutaṁ vāma-svabhāvā kṛpayā nanāma ca

अर्थ: गुरुपुत्र को पशु की भाँति बँधा हुआ, अपने घृणित कर्म से मुख नीचे किए देखकर, कोमल स्वभाव वाली द्रौपदी करुणा से भर उसे प्रणाम करती है। (स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 42)

वह उसे बन्धन में नहीं देख सकी। “इसे छोड़ दो, इसे छोड़ दो,” उसने कहा, “क्योंकि यह ब्राह्मण है, हमारे आदर के योग्य।” उसने स्मरण कराया कि द्रोणाचार्य की ही कृपा से अर्जुन ने सम्पूर्ण धनुर्विद्या सीखी थी; और वही द्रोण अब अपने पुत्र में जीवित हैं। अपने ही गुरु के परिवार को धर्मात्मा जनों के हाथों कभी कष्ट न मिले। और उसने एक माता के सहानुभूति-भरे वे वचन कहे जिन्हें कोई माता अस्वीकार नहीं कर सकती:

मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ।
यथाहं मृतवत्सार्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥ ४७ ॥

mā rodīd asya jananī gautamī pati-devatā yathāhaṁ mṛta-vatsārtā rodimy aśru-mukhī muhuḥ

अर्थ: “इसकी माता गौतमी, जो अपने पति को देवता मानती है, वैसे ही बार-बार न रोए जैसे मैं अपने पुत्रों के वियोग से पीड़ित होकर रो रही हूँ।” (स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 47)

मध्यम मार्ग का विवेक

धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने रानी के उन वचनों का स्वागत किया, जो करुणापूर्ण, निष्कपट, निष्पक्ष और उदार थे। नकुल और सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण, तथा वहाँ उपस्थित समस्त नर-नारियों ने उसके कथन का समर्थन किया। केवल भीम ने असहमति जताई, यह कहते हुए कि जिसने बिना किसी लाभ के सोते हुए बालकों का वध किया, वह मृत्यु के अतिरिक्त और किसी का पात्र नहीं। रानी की करुणा और भीम के न्याय के बीच, भगवान् ने अपने सखा की ओर देखा और, मानो मुस्कराते हुए, वह समाधानकारी वचन कहा:

श्रीभगवानुवाच

ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः ।

मयैवोभयमाप्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥ ५३ ॥

कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम् ।

प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ॥ ५४ ॥

śrī-bhagavān uvāca brahma-bandhur na hantavya ātatāyī vadhārhaṇaḥ mayaivobhayam āmnātaṁ paripāhy anuśāsanam

kuru pratiśrutaṁ satyaṁ yat tat sāntvayatā priyām priyaṁ ca bhīmasenasya pāñcālyā mahyam eva ca

अर्थ: ब्राह्मण के मात्र बन्धु का वध नहीं करना चाहिए — किन्तु जो आततायी बन जाए, वह इस रक्षा को खो देता है, क्योंकि ये दोनों ही विधान शास्त्रों में वर्णित हैं और माने जाने चाहिए। अपनी शोकाकुल पत्नी को दिया वचन निभाओ, और साथ ही भीमसेन की माँग तथा मेरी भी इच्छा पूर्ण करो। (स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक ५३-५४)

दोनों शिक्षाएँ — पतित ब्राह्मण के प्रति क्षमा, और आततायी के विरुद्ध न्याय — शास्त्रों में साथ-साथ खड़ी हैं, ऐसा भगवान् ने कहा; अतः, उन्होंने अर्जुन से कहा, द्रौपदी से की गई प्रतिज्ञा का पालन करो, भीम को सन्तुष्ट करो, और मुझे प्रसन्न करो — एक ही साथ।

उचित दण्ड

अर्जुन ने क्षण भर में भगवान् का अभिप्राय समझ लिया।

अर्जुनः सहसाज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना ।

मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम् ॥ ५५ ॥

arjunaḥ sahasājñāya harer hārdam athāsinā maṇim jahāra mūrdhanyam dvijasya saha-mūrdhajam

अर्थ: श्रीहरि के अभिप्राय को तत्काल समझकर अर्जुन ने अपनी तलवार से ब्राह्मण के मस्तक की मणि को उसके केशों सहित काट लिया। (स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 55)

अपनी शोभा-स्वरूप मणि से रहित, अपने तेज से वंचित, अश्वत्थामा को बन्धन से मुक्त कर शिविर से बाहर निकाल दिया गया। क्योंकि, जैसा शास्त्र में वर्णित है, ऐसे पतित ब्राह्मण के लिए मस्तक-मुण्डन, सम्पत्ति की जब्ती और अपने स्थान से बहिष्कार ही मृत्युदण्ड के स्थान पर विहित दण्ड है; इससे बढ़कर कोई शारीरिक दण्ड उसके लिए निर्धारित नहीं। न्याय भी हुआ, प्रतिज्ञा भी पूरी हुई, और फिर भी किसी ब्राह्मण का रक्त नहीं बहा।

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ।

एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥ ५७ ॥

vapanam draviṇādānam sthānān niryāpaṇam tathā eṣa hi brahma-bandhūnām vadho nānyo 'sti daihikaḥ

अर्थ: सिर मुँडवाना, धन का हरण, और स्थान से निष्कासन — पतित ब्राह्मण के लिए यही शारीरिक “वध” विहित है; इसके अतिरिक्त और कोई नहीं। (स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 57)

तत्पश्चात् पाण्डु-पुत्रों ने, द्रौपदी — जिसे कृष्णा भी कहते हैं — के साथ, अपने पुत्रों के वियोग से शोकाकुल होकर, अपने दिवंगत स्वजनों का दाह-संस्कार तथा अन्त्येष्टि-कर्म सम्पन्न किया।

पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ।

स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निररणादिकम् ॥ ५८ ॥

putra-śokāturāḥ sarve pāṇḍavāḥ saha kṛṣṇayā svānām mṛtānām yat kṛtyam cakrur nirharaṇādikam

अर्थ: पाण्डवों ने, द्रौपदी के साथ, अपने पुत्रों के शोक से पीड़ित होकर, अपने दिवंगत स्वजनों का दाह-संस्कार तथा अन्य अन्त्येष्टि-कर्म सम्पन्न किए। (स्कन्ध 1, अध्याय 7, श्लोक 58)

प्रमुख शिक्षाएँ

1. भक्ति जीव के दुःख का साक्षात् उपचार है। व्यास जी ने भागवत की रचना तब की जब उन्होंने ध्यान में देखा कि भक्तियोग माया से उत्पन्न दुःखों का साक्षात् निवारण है (श्लोक 6)। सम्पूर्ण अध्याय इसी आधार पर टिका है: केवल कर्मकाण्ड नहीं, केवल तर्क नहीं, बल्कि प्रेममयी भक्ति ही हृदय को मुक्त करती है।

2. केवल श्रवण ही भक्ति जगा देता है। श्लोक 7 वचन देता है कि केवल इस शास्त्र के श्रवण मात्र से हृदय में ऐसी भक्ति उदित होती है जो शोक, मोह और भय की जड़ें उखाड़ फेंकती है। इसीलिए भागवत बार-बार सुनने के लिए है।

3. मुक्त पुरुष भी भगवान् की सेवा करते हैं। आत्माराम श्लोक (श्लोक 10) प्रकट करता है कि भगवान् के गुण इतने मनोहर हैं कि पूर्णतया आत्मतृप्त मुनि भी निरहेतुक भक्ति करते हैं। भक्ति मोक्ष से नीचे का सोपान नहीं, अपितु उसका ही पुष्प है।

4. प्रत्येक संकट में भगवान् की ओर मुड़ो। जब ब्रह्मास्त्र ने सबको भयभीत किया, तब अर्जुन ने अपने प्रसिद्ध पराक्रम पर नहीं, अपितु श्रीकृष्ण को पुकारा (श्लोक 22)। भक्त का प्रथम आश्रय भगवान् ही हैं।

5. धर्म करुणा और न्याय को एक साथ धारण करता है। द्रौपदी की करुणा और भीम की न्याय-माँग — दोनों श्रीकृष्ण के विवेक से सम्मानित हुईं। सच्चा धर्म किसी एक गुण की दूसरे पर विजय नहीं, अपितु दिव्य मार्गदर्शन में उनका समन्वय है।

भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय की सर्वाधिक विस्मयकारी मूर्ति द्रौपदी है। उसके पास क्रोध का हर कारण था: उसके पाँच पुत्र नींद में मार डाले गए, उनका वधकर्ता उसके समक्ष बैधा हुआ। और फिर भी, अपना हृदय चूर करने वाले उस पुरुष को देखकर, उसने प्रणाम किया। उसका शोक घृणा में कठोर नहीं हुआ; वह एक अन्य माता के प्रति सहानुभूति में कोमल हो गया, जो शीघ्र ही उसी की भाँति रो सकती थी। भक्ति आत्मा के साथ यही करती है — वह हृदय को इतना विस्तृत कर देती है कि शत्रु का दुःख भी अपना बन जाता है। उसके पास खड़े हैं अर्जुन, अपनी प्रतिज्ञा और गुरु-परिवार के प्रति श्रद्धा के बीच विभाजित, और उन दोनों के ऊपर खड़े हैं श्रीकृष्ण, जो इस उलझन को किसी कर्तव्य को रद्द करके नहीं, अपितु सबको एक साथ पूर्ण करके सुलझाते हैं। हमें दिखाया जाता है कि आध्यात्मिक जीवन प्रायः करुणा और न्याय के बीच का चुनाव नहीं है; अधिकतर वह दोनों का सम्मान करने का कठिन, विनम्र कार्य है — और यह विश्वास कि भगवान् हमें मार्ग दिखाएँगे।

दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज उस एक व्यक्ति को स्मरण करें जिसने आपका अनिष्ट किया हो, और — चाहे केवल एक क्षण के लिए — उसके परिवार के कल्याण की प्रार्थना करें, जैसे द्रौपदी ने गौतमी के लिए की। फिर श्रीमद्भागवत का एक अंश ऊँचे स्वर में सुनें या पढ़ें, श्लोक 7 के वचन का स्मरण करते हुए: कि ऐसा श्रवण ही एक ऐसी भक्ति जगाता है जो शोक, मोह और भय को हर लेती है।

उपसंहार

प्रथम स्कन्ध का सातवाँ अध्याय दो महान धाराओं को जोड़ता है। पहले यह स्वयं भागवत के पवित्र उद्गम को प्रकट करता है: व्यास जी ने ध्यान में यह देखकर कि केवल भक्ति ही दुःखी जीव को मुक्त कर सकती है, इस शास्त्र की रचना की और इसे अपने पुत्र शुक्रदेव जी को दिया, ताकि जो भी इसे सुने उसे शोक, मोह और भय को हरने वाली भक्ति प्राप्त हो। फिर यह हमें युद्ध के पश्चात् के सर्वाधिक अन्धकारपूर्ण क्षण में ले जाता है, जहाँ अश्वत्थामा का अपराध, अर्जुन का धधकता पीछा, द्रौपदी की अद्भुत करुणा और भीम की न्याय-पुकार — ये सब श्रीकृष्ण के विवेक से समेट लिए जाते हैं और सुलझा दिए जाते हैं। पतित ब्राह्मण दण्डित होता है, फिर भी किसी ब्राह्मण का रक्त नहीं बहता; प्रतिज्ञा पूरी होती है, करुणा सम्मानित होती है, और शोकमग्न परिवार अपने बालकों को अन्तिम विश्राम देता है। कोमलता और सत्य के इस ताने-बाने में हमें भागवत की सम्पूर्ण आत्मा की झलक मिलती है — कि परमेश्वर अपने भक्तों को प्रत्येक शोक के पार शुद्ध प्रेम की ओर ले जाते हैं।

श्रीमद्भागवत की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, प्रथम स्कन्ध, सप्तम अध्याय (श्लोक 1-58)।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् · बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट। पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-chapter-7-son-of-drona-punished-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट